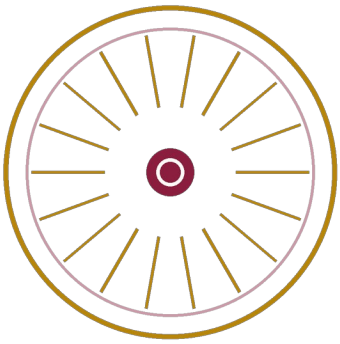

अध्याय 4: ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.01**

> इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् |
> विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् || **01** ||

हिन्दी अनुवाद:
श्री भगवान बोले—मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा और मनु ने राजा इक्ष्वाकु से कहा।

सरल व्याख्या:
भगवान इस ज्ञान की प्राचीनता और प्रामाणिकता को स्पष्ट कर रहे हैं। यह योग कोई नया विचार नहीं है, बल्कि सृष्टि के आरम्भ से चला आ रहा शाश्वत सत्य है। यह ज्ञान सबसे पहले सूर्य को दिया गया, जो ऊर्जा और प्रकाश का प्रतीक है, ताकि वे इसे संसार में फैला सकें। इससे पता चलता है कि यह ज्ञान राजाओं और ऋषियों के माध्यम से समाज के संचालन के लिए उपयोग किया जाता था।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य शाश्वत और अपरिवर्तनीय है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी महापुरुषों द्वारा हस्तांतरित किया जाता है।

श्लोक संख्या: **4.02**

> एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः |
> स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप || **02** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे परंतप अर्जुन! इस प्रकार परंपरा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्तप्राय हो गया।

सरल व्याख्या:
ज्ञान जब परंपरा से जुड़ा रहता है, तब तक जीवित रहता है। लेकिन समय के प्रभाव से, मनुष्यों की स्वार्थपरता और विस्मृति के कारण यह दिव्य योग लुप्त हो गया। यहाँ 'नष्ट' होने का अर्थ यह नहीं कि सत्य समाप्त हो गया, बल्कि यह कि लोगों के अनुभव और आचरण से ओझल हो गया। भगवान पुनः उसी लुप्त कड़ी को जोड़ने आए हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... समय के साथ आध्यात्मिक ज्ञान धुंधला पड़ जाता है, जिसे पुनः जाग्रत करने की आवश्यकता होती है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.03**

> स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः |
> भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् || **03** ||

हिन्दी अनुवाद:
वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझसे कहा है, क्योंकि तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है; इसलिए यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है।

सरल व्याख्या:
भगवान अर्जुन को इस ज्ञान का पात्र मानते हैं। ज्ञान केवल बुद्धिमान होने से नहीं, बल्कि 'हृदय' के शुद्ध होने से प्राप्त होता है। अर्जुन भक्त भी है और मित्र भी, अर्थात उसमें समर्पण और प्रेम दोनों हैं। यह योग एक 'रहस्य' है क्योंकि इसे केवल तर्क से नहीं, बल्कि अनुभव और श्रद्धा से ही समझा जा सकता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करने के लिए पात्रता और गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव होना अनिवार्य है।

श्लोक संख्या: **4.04**

> अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः |
> कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति || **04** ||

हिन्दी अनुवाद:
अर्जुन बोले—आपका जन्म तो अभी हाल का है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है; अतः मैं इस बात को कैसे समझूँ कि आप ही ने कल्प के आदि में सूर्य से यह योग कहा था?

सरल व्याख्या:
अर्जुन यहाँ एक जिज्ञासु साधक की तरह प्रश्न कर रहे हैं। वे कृष्ण को उनके मानवीय शरीर के रूप में देख रहे हैं। उन्हें आश्चर्य है कि वर्तमान समय के कृष्ण ने हज़ारों साल पहले सूर्य को उपदेश कैसे दिया होगा। यह प्रश्न हम सबके मन में उठने वाले संशय का प्रतिनिधित्व करता है जो ईश्वर के अजन्मे स्वरूप को नहीं पहचान पाते।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... मानवीय बुद्धि की एक सीमा है, जिसके पार जाने के लिए दिव्य दृष्टि की आवश्यकता होती है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.05**

> बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन |
> तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप || **05** ||

हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान बोले—हे परंतप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूँ, किन्तु तू नहीं जानता।

सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ 'जीव' और 'ईश्वर' के अंतर को स्पष्ट करते हैं। आत्मा अमर है और वह अनेक शरीरों से गुज़रती है। जीव अपनी अज्ञानता और माया के कारण पिछले जन्मों को भूल जाता है, लेकिन परमात्मा माया के स्वामी हैं, इसलिए उन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान का पूर्ण ज्ञान रहता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान के अभाव में मनुष्य स्वयं को केवल इस वर्तमान शरीर तक सीमित मान लेता है, जबकि वह अनंत यात्रा का हिस्सा है।

श्लोक संख्या: **4.06**

> अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् |
> प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया || **06** ||

हिन्दी अनुवाद:

मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी, अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ।

सरल व्याख्या:

भगवान अपने अवतार का रहस्य बताते हैं। वे साधारण मनुष्य की तरह कर्मों के वश होकर जन्म नहीं लेते। वे प्रकृति के तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) के स्वामी हैं, उनके गुलाम नहीं। वे अपनी दिव्य शक्ति (योगमाया) का आश्रय लेकर स्वेच्छा से संसार में शरीर धारण करते हैं ताकि धर्म की रक्षा हो सके।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर का जन्म दिव्य और अलौकिक है, वे प्रकृति के नियमों से ऊपर हैं।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.07**

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत |
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् || **07** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् प्रकट होता हूँ।

सरल व्याख्या:
यह ईश्वर के धरती पर आने का समय निश्चित करता है। 'धर्म' का अर्थ है वह व्यवस्था जो सृष्टि को धारण करती है। जब समाज में नैतिकता गिर जाती है, अन्याय बढ़ जाता है और मानवता का पतन होने लगता है, तब परमात्मा स्वयं को साकार रूप में प्रकट करते हैं ताकि बिगड़े हुए संतुलन को पुनः सुधारा जा सके।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर अधर्म को अनियंत्रित नहीं होने देते और समय-समय पर स्वयं हस्तक्षेप करते हैं।

श्लोक संख्या: **4.08**

> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् |
> धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे || **08** ||

हिन्दी अनुवाद:
साधु पुरुषों के उद्धार के लिए, पापकर्म करने वालों के विनाश के लिए और धर्म की भलीभाँति स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ।

सरल व्याख्या:
अवतार के तीन मुख्य कार्य हैं: सज्जन व्यक्तियों की रक्षा करना, जिनके मन में ईश्वरीय प्रेम है; नकारात्मक प्रवृत्तियों और बुराई का अंत करना; और समाज में न्याय व धर्म की मर्यादा को फिर से स्थापित करना। यहाँ विनाश का भाव केवल वध नहीं, बल्कि अधर्म की बुद्धि का शुद्धिकरण भी है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय शक्ति का उद्देश्य सदैव न्याय और सत्य की विजय सुनिश्चित करना है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.09**

> जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः |
>
> त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन || **09** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्व से जान लेता है, वह शरीर को त्यागकर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता, बल्कि मुझे ही प्राप्त होता है।

सरल व्याख्या:

भगवान के अवतार और उनके द्वारा किए गए कार्यों को साधारण मानवीय क्रिया न मानकर, उन्हें ईश्वरीय संकल्प के रूप में समझना ही 'तत्व से जानना' है। जो व्यक्ति इस गहराई को समझ लेता है, उसके भीतर का मोह और अहंकार नष्ट हो जाता है। ऐसा ज्ञानी पुरुष मृत्यु के पश्चात जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होकर परमात्मा में विलीन हो जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के दिव्य स्वरूप का वास्तविक ज्ञान ही मोक्ष का मार्ग है।

श्लोक संख्या: **4.10**

> वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः |
>
> बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः || **10** ||

हिन्दी अनुवाद:

जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गए हैं और जो मुझमें अनन्य प्रेमपूर्वक स्थित हैं, ऐसे मेरे आश्रित रहने वाले बहुत से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूपी तप से पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं।

सरल व्याख्या:

मुक्ति पाने की विधि बताई गई है। सबसे पहले आसक्ति (राग), असुरक्षा (भय) और क्रोध का त्याग करना होगा। जब मन इन विकारों से खाली होता है, तभी वह परमात्मा के प्रेम से भर सकता है। इस शुद्धिकरण की प्रक्रिया को 'ज्ञान का तप' कहा गया है। इतिहास में अनेक महापुरुषों ने इसी मार्ग पर चलकर ईश्वरत्व को प्राप्त किया है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक विकारों से मुक्ति और ईश्वर पर पूर्ण निर्भरता ही आत्म-साक्षात्कार का आधार है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.11**

> ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् |
> मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः || **11** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।

सरल व्याख्या:
भगवान यहाँ अपनी निष्पक्षता प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि जो जिस भाव से मेरी शरण लेता है, मैं उसे उसी रूप में प्राप्त होता हूँ। चाहे कोई उन्हें सखा माने, स्वामी माने या निराकार सत्य के रूप में खोजे, वे हर पुकार का उत्तर देते हैं। अंततः संसार की हर खोज, चाहे अनजाने में ही क्यों न हो, परमात्मा की ही ओर एक कदम है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के साथ हमारा जैसा भाव और संबंध होगा, उनकी प्राप्ति भी हमें वैसी ही होगी।

श्लोक संख्या: **4.12**

> काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः |
> क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा || **12** ||

हिन्दी अनुवाद:
इस मनुष्य लोक में कर्मों के फल को चाहने वाले लोग देवताओं का पूजन किया करते हैं, क्योंकि कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है।

सरल व्याख्या:
ज्यादातर मनुष्य संसार की वस्तुओं जैसे धन, मान और सफलता के पीछे भागते हैं। इन क्षणभंगुर इच्छाओं की पूर्ति के लिए वे विभिन्न शक्तियों की उपासना करते हैं, और सांसारिक सफलता जल्दी मिल भी जाती है। लेकिन भगवान यहाँ संकेत दे रहे हैं कि तात्कालिक लाभ के बदले उस शाश्वत शांति की खोज करनी चाहिए जो निष्काम भाव से मिलती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सांसारिक सफलता सुलभ है, परंतु आत्मिक उन्नति के लिए धैर्य और निस्वार्थ भाव की आवश्यकता होती है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.13**

> चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः |
> तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् || **13** ||

हिन्दी अनुवाद:

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णों का समूह गुण और कर्मों के विभाग पूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि-रचना आदि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जान।

सरल व्याख्या:

समाज की व्यवस्था गुणों (स्वभाव) और कर्मों (कार्यक्षमता) के आधार पर बनाई गई है। व्यक्ति की प्रवृत्ति ही उसके वर्ण का निर्धारण करती है। भगवान स्पष्ट करते हैं कि यद्यपि यह व्यवस्था उन्होंने रची है, फिर भी वे इसमें लिप्त नहीं हैं। वे सब कुछ करते हुए भी स्वयं को इनसे ऊपर और निर्लिप्त रखते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय विधान गुणों और कर्मों पर आधारित है, और परमात्मा सब कुछ रचकर भी अलिप्त रहते हैं।

श्लोक संख्या: **4.14**

> न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा |
> इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते || **14** ||

हिन्दी अनुवाद:

कर्मों के फल में मेरी स्पृहा (आसक्ति) नहीं है, इसलिए मुझे कर्म लिप्त नहीं करते। इस प्रकार जो मुझे तत्व से जान लेता है, वह भी कर्मों से नहीं बँधता।

सरल व्याख्या:

परमात्मा कर्म तो करते हैं, लेकिन उनके पीछे कोई निजी इच्छा या स्वार्थ नहीं होता, इसीलिए कर्मों का बंधन उन पर लागू नहीं होता। जो मनुष्य इस सत्य को समझ लेता है और ईश्वर के इसी आदर्श को अपने जीवन में उतारता है, वह भी कर्म करते हुए उनके फलों के जाल में नहीं फँसता।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म नहीं, बल्कि फल की इच्छा ही बंधन का असली कारण है।

Satyanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.15**

> एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः |
> कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् || **15** ||

हिन्दी अनुवाद:

पूर्वकाल के मुमुक्षुओं (मोक्ष चाहने वालों) ने भी ऐसा जानकर ही कर्म किए हैं, इसलिए तू भी पूर्वजों द्वारा सदा से किए जाने वाले कर्मों को ही कर।

सरल व्याख्या:

भगवान अर्जुन को समझाते हैं कि प्राचीन काल के महान ऋषियों और राजाओं ने भी इसी निष्काम भाव को अपनाकर अपने कर्तव्यों का पालन किया और मुक्ति प्राप्त की। वे अर्जुन को सलाह देते हैं कि उसे कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए, बल्कि उन्हीं महापुरुषों के पदचिह्नों पर चलकर अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य का पालन करते हुए भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते भाव निष्काम हो।

श्लोक संख्या: **4.16**

> किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः |
> तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् || **16** ||

हिन्दी अनुवाद:

कर्म क्या है और अकर्म क्या है—इस विषय में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित (भ्रमित) हो जाते हैं। इसलिए वह कर्म तत्व मैं तुझे भलीभाँति समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभ (संसार-बंधन) से मुक्त हो जाएगा।

सरल व्याख्या:

कर्म की परिभाषा केवल हाथ-पैर हिलाना नहीं है। कभी-कभी शांत बैठना भी एक बड़ा कर्म होता है और कभी-कभी भाग-दौड़ करते हुए भी मनुष्य भीतर से अकर्ता होता है। इस सूक्ष्म भेद को समझना बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी कठिन है। भगवान इसी गुत्थी को सुलझाने का आश्वासन देते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म की प्रकृति बहुत सूक्ष्म है और इसे समझना आध्यात्मिक मार्ग के लिए अनिवार्य है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.17**

> कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः |
> अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः || **17** ||

हिन्दी अनुवाद:
कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए; क्योंकि कर्म की गति गहन है।

सरल व्याख्या:
तीन प्रकार की क्रियाओं को समझना ज़रूरी है: 'कर्म' (शास्त्र सम्मत कर्तव्य), 'विकर्म' (वर्जित या गलत कार्य) और 'अकर्म' (वह स्थिति जहाँ कर्म फल पैदा नहीं करता)। कर्मों का परिणाम कैसे और कब मिलता है, यह अत्यंत जटिल है, इसलिए साधक को बहुत विवेकपूर्ण होना चाहिए।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सही, गलत और फलहीन कर्म के बीच का अंतर जानना ही विवेक है।

श्लोक संख्या: **4.18**

> कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः |
> स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् || **18** ||

हिन्दी अनुवाद:
जो मनुष्य कर्म में अकर्म देखता है और जो अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान है और वह योगी समस्त कर्मों को करने वाला है।

सरल व्याख्या:
सच्चा योगी वह है जो शरीर से कर्म करते हुए भी भीतर से यह अनुभव करता है कि 'मैं कुछ नहीं कर रहा' (कर्म में अकर्म)। वहीं, यदि कोई बाहर से निष्क्रिय बैठा है पर उसका मन इच्छाओं में दौड़ रहा है, तो वह वास्तव में कर्म ही कर रहा है (अकर्म में कर्म)। इस सत्य को जानने वाला ही पूर्ण ज्ञानी है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर की क्रिया से अधिक मन की अवस्था और कर्तापन का भाव महत्वपूर्ण है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.19**

> यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः |
>
> ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः || **19** ||

हिन्दी अनुवाद:

जिसके संपूर्ण कार्य कामना और संकल्प से रहित हैं तथा जिसके कर्म ज्ञानरूपी अग्नि द्वारा भस्म हो गए हैं, उस महापुरुष को ज्ञानी जन भी पंडित कहते हैं।

सरल व्याख्या:

ज्ञानी वह है जो किसी व्यक्तिगत इच्छा (काम) या स्वार्थपूर्ण योजना (संकल्प) के बिना कार्य करता है। जब कर्म केवल सेवा और ईश्वर के निमित्त होते हैं, तो वे कोई नया बंधन पैदा नहीं करते। ज्ञान की यह अग्नि पुराने संचित कर्मों के प्रभाव को वैसे ही जला देती है जैसे आग ईंधन को।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वार्थ रहित कर्म ही मनुष्य को कर्मों के बोझ से मुक्त करता है।

श्लोक संख्या: **4.20**

> त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः |
>
> कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः || **20** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो समस्त कर्मफलों में आसक्ति का त्याग करके सदा संतुष्ट और किसी के भी आश्रय से रहित है, वह कर्मों में अच्छी प्रकार प्रवृत्त होने पर भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।

सरल व्याख्या:

ऐसा व्यक्ति बाहरी संसाधनों या लोगों पर अपनी खुशी के लिए निर्भर नहीं होता (निराश्रय)। वह अपने आप में ही तृप्त रहता है। वह संसार के सभी कार्य बड़ी कुशलता से करता है, लेकिन क्योंकि उसका हृदय फलों से नहीं जुड़ा होता, इसलिए वह उन कार्यों के प्रभाव से अछूता रहता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... आंतरिक संतोष और अनासक्ति ही कर्म को बंधनमुक्त बनाती है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.21**

> निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः |
> शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् || **21** ||

हिन्दी अनुवाद:
जिसने अंतःकरण और शरीर को जीत लिया है, जो समस्त भोगों की सामग्री से रहित है और जिसने सब प्रकार के संग्रह का त्याग कर दिया है, ऐसा आशा रहित पुरुष केवल शरीर संबंधी कर्म करता हुआ भी पाप को प्राप्त नहीं होता।

सरल व्याख्या:
यहाँ उस साधक का वर्णन है जो मन और इन्द्रियों का स्वामी बन चुका है। वह भविष्य की किसी इच्छा (आशा) के अधीन नहीं है और न ही वह वस्तुओं को इकट्ठा करने के मोह में फँसा है। वह केवल जीवित रहने के लिए आवश्यक कार्य करता है, इसलिए उसके कर्मों से कोई नया संस्कार या पाप उत्पन्न नहीं होता।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... मन पर नियंत्रण और अपरिग्रह (संग्रह न करना) मनुष्य को कर्मों के दोष से बचाता है।

श्लोक संख्या: **4.22**

> यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः |
> समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते || **22** ||

हिन्दी अनुवाद:
जो बिना इच्छा के अपने आप प्राप्त हुए पदार्थ में सदा संतुष्ट रहता है, जिसमें ईर्ष्या का सर्वथा अभाव है और जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों से सर्वथा अतीत हो गया है, ऐसा सिद्धि और असिद्धि में सम रहने वाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता।

सरल व्याख्या:
सच्चा योगी वह है जिसे जो मिल जाए उसी में संतोष है। वह किसी से तुलना या जलन (ईर्ष्या) नहीं करता। चाहे काम सफल हो (सिद्धि) या असफल (असिद्धि), उसका मन शांत रहता है। सुख-दुख के द्वन्द्व उसे विचलित नहीं करते, इसलिए उसके कर्म उसे संसार में नहीं बाँधते।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... समता का भाव ही कर्मयोग की सफलता का मुख्य लक्षण है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.23**

> गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः |
> यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते || **23** ||

हिन्दी अनुवाद:
जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गई है, जो देहाभिमान और ममता से रहित है और जिसका चित्त निरंतर परमात्मा के ज्ञान में स्थित रहता है, ऐसे केवल यज्ञ के लिए कर्म करने वाले मनुष्य के संपूर्ण कर्म विलीन हो जाते हैं।

सरल व्याख्या:
जब मनुष्य कर्म को केवल स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि एक 'यज्ञ' (निस्वार्थ सेवा) के रूप में करता है, तो उसके कर्मों का कोई फल शेष नहीं रहता। उसका मन हर समय सत्य के बोध में टिका होता है, जिससे उसके द्वारा किए गए सभी कार्य परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान और निस्वार्थ सेवा भाव से किए गए कर्म मनुष्य के प्रारब्ध के बोझ को मिटा देते हैं।

श्लोक संख्या: **4.24**

> ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् |
> ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना || **24** ||

हिन्दी अनुवाद:
जिस यज्ञ में अर्पण भी ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है और ब्रह्मरूप कर्ता द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में जो आहुति दी गई है, वह भी ब्रह्म ही है—उस ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले मनुष्य द्वारा प्राप्त करने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।

सरल व्याख्या:
यह अद्वैत दृष्टि का वर्णन है। ज्ञानी अनुभव करता है कि जो पात्र वह उपयोग कर रहा है, जो सामग्री वह चढ़ा रहा है, जो अग्नि जल रही है और वह स्वयं—सब कुछ परमात्मा (ब्रह्म) का ही अंश है। जब पूरी क्रिया ही ब्रह्ममय हो जाती है, तब उस कर्म का परिणाम भी परमात्मा ही होता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हर कार्य में ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करना ही सबसे बड़ी समाधि है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.25**

> दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते |
> ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति || **25** ||

हिन्दी अनुवाद:
दूसरे योगीजन देवताओं के पूजन रूप यज्ञ का ही भलीभाँति अनुष्ठान करते हैं और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मा रूप अग्नि में अभेद दर्शन रूप यज्ञ द्वारा ही आत्मा का हवन करते हैं।

सरल व्याख्या:
यज्ञ के विभिन्न प्रकार बताए जा रहे हैं। कुछ साधक श्रद्धापूर्वक देवताओं की उपासना कर यज्ञ करते हैं। वहीं, जो ज्ञानमार्गी हैं, वे अपने 'अहंकार' और 'पृथक अस्तित्व' को परमात्मा के ज्ञान की अग्नि में विलीन कर देते हैं। वे स्वयं को परमात्मा से अलग नहीं देखते, यही उनका यज्ञ है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... पूजा का बाहरी रूप और ज्ञान का आंतरिक मार्ग, दोनों ही यज्ञ की श्रेणियाँ हैं।

श्लोक संख्या: **4.26**

> श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति |
> शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति || **26** ||

हिन्दी अनुवाद:
अन्य योगी कानों आदि समस्त इन्द्रियों को संयम रूप अग्नियों में हवन करते हैं और दूसरे योगी शब्द आदि समस्त विषयों को इन्द्रिय रूप अग्नियों में हवन करते हैं।

सरल व्याख्या:
इन्द्रियों पर नियंत्रण भी एक यज्ञ है। कुछ लोग अपनी इन्द्रियों को बाहरी विषयों से खींचकर संयम की अग्नि में डालते हैं (दमन नहीं, नियंत्रण)। कुछ ऐसे हैं जो विषयों का उपयोग तो करते हैं, लेकिन इन्द्रियों की अग्नि में उन्हें इस तरह स्वाहा करते हैं कि उनमें कोई राग-द्वेष पैदा न हो।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... इन्द्रियों को वश में रखना और विषयों के प्रति अनासक्त रहना भी एक बड़ी साधना है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.27**

> सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे |
> आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते || **27** ||

हिन्दी अनुवाद:
दूसरे योगी इन्द्रियों की संपूर्ण क्रियाओं को और प्राणों की समस्त क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयम योग रूप अग्नि में हवन करते हैं।

सरल व्याख्या:
यहाँ ध्यान योग की बात है। साधक अपनी इन्द्रियों की चंचलता और प्राणों की गति (साँस) को रोककर उन्हें 'आत्मसंयम' में लगा देता है। यह क्रिया ज्ञान द्वारा प्रकाशित होती है, अर्थात इसमें कोई ज़बरदस्ती नहीं बल्कि समझदारी होती है। वह अपनी पूरी ऊर्जा को आत्मा के भीतर केंद्रित कर देता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर और प्राणों की ऊर्जा को आत्मा की ओर मोड़ना ही वास्तविक आत्मसंयम है।

श्लोक संख्या: **4.28**

> द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे |
> स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः || **28** ||

हिन्दी अनुवाद:
कितने ही पुरुष द्रव्य संबंधी यज्ञ करने वाले हैं, कितने ही तपस्या रूप यज्ञ करने वाले हैं तथा दूसरे कितने ही योग रूप यज्ञ करने वाले हैं और कितने ही अहिंसा आदि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील साधक स्वाध्याय रूप ज्ञानयज्ञ करने वाले हैं।

सरल व्याख्या:
भगवान साधना की विविधता को मान्यता देते हैं। कोई अपनी संपत्ति का दान (द्रव्ययज्ञ) करता है, कोई उपवास या कठिन नियम (तपोयज्ञ) अपनाता है, कोई अष्टांग योग करता है और कोई शास्त्रों का मनन व आत्म-चिन्तन (ज्ञानयज्ञ) करता है। सभी अपनी निष्ठा के अनुसार उन्नति कर रहे हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की प्राप्ति के अनेक द्वार हैं, और हर निस्वार्थ प्रयास यज्ञ के समान पवित्र है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.29**

> अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे |
> प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः || **29** ||

हिन्दी अनुवाद:

दूसरे कितने ही योगीजन अपान वायु में प्राण वायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगी प्राण वायु में अपान वायु को हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम के परायण होते हैं।

सरल व्याख्या:

यहाँ प्राणायाम की सूक्ष्म क्रियाओं का वर्णन है। श्वास को अंदर लेना, बाहर छोड़ना और कुंभक (साँस रोकना)—इनके माध्यम से योगी अपने चित्त को स्थिर करते हैं। यह शरीर के भीतर चलने वाली ऊर्जा को नियंत्रित कर एकाग्रता प्राप्त करने का यज्ञ है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... प्राणों पर विजय प्राप्त करना मन को वश में करने का एक सशक्त साधन है।

श्लोक संख्या: **4.30**

> अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति |
> सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः || **30** ||

हिन्दी अनुवाद:

दूसरे कितने ही नियमित आहार करने वाले पुरुष प्राणों को प्राणों में ही हवन करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश करने वाले और यज्ञों के तत्व को जानने वाले हैं।

सरल व्याख्या:

आहार पर नियंत्रण (संयमित भोजन) भी एक यज्ञ है। जो लोग अनुशासन के साथ जीवन जीते हैं और अपनी ऊर्जा का अपव्यय नहीं करते, उनके सभी पाप (मानसिक विकार) इन यज्ञों द्वारा नष्ट हो जाते हैं। भगवान कहते हैं कि ये सभी विधियाँ साधक को शुद्ध करने के लिए ही बनाई गई हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अनुशासन और यज्ञ का भाव मनुष्य के भीतर की बुराइयों को जलाकर उसे निर्मल बना देता है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.31**

> यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् |
> नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम || **31** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ से बचे हुए अमृत का अनुभव करने वाले योगी सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं और यज्ञ न करने वाले पुरुष के लिए तो यह मनुष्य लोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा?

सरल व्याख्या:

'यज्ञ-शिष्ट' का अर्थ है अपने कर्तव्यों और सेवा के बाद जो कुछ बचे उसे ग्रहण करना। ऐसा जीवन जीने वाला व्यक्ति परमानंद (अमृत) को प्राप्त होता है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति केवल अपने स्वार्थ के लिए जीता है और त्याग नहीं करता, उसे इस संसार में भी कभी मानसिक शांति और संतोष नहीं मिल सकता।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... निस्वार्थ सेवा और त्याग ही इस लोक और परलोक में सुख का एकमात्र मार्ग है।

श्लोक संख्या: **4.32**

> एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे |
> कर्मजान्विद्धि तान्त्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे || **32** ||

हिन्दी अनुवाद:

इसी प्रकार और भी बहुत तरह के यज्ञ वेदों की वाणी में विस्तार से कहे गए हैं। उन सबको तू कर्मों से उत्पन्न होने वाला जान। इस प्रकार जानकर तू कर्म-बंधन से मुक्त हो जाएगा।

सरल व्याख्या:

ईश्वर तक पहुँचने के जितने भी मार्ग (यज्ञ) पिछले श्लोकों में बताए गए हैं, वे सभी कर्म (क्रिया) के माध्यम से ही सिद्ध होते हैं। भगवान समझा रहे हैं कि कर्म से भागना नहीं है, बल्कि कर्म को यज्ञ के रूप में करना सीखना है। इस सत्य को समझने वाला व्यक्ति कर्म करते हुए भी बंधनमुक्त रहता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म ही वह माध्यम है जिससे सभी प्रकार के यज्ञ पूर्ण होते हैं और मोक्ष प्राप्त होता है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.33**

> श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप |
> सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते || **33** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे परंतप अर्जुन! द्रव्यमय यज्ञ (वस्तुओं के दान आदि) की अपेक्षा 'ज्ञानयज्ञ' अत्यंत श्रेष्ठ है, क्योंकि हे पार्थ! संपूर्ण मात्र कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।

सरल व्याख्या:

धन या वस्तुओं का त्याग करना अच्छा है, लेकिन अपने अज्ञान का त्याग करना और सत्य को जानना उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ है। सभी शारीरिक और मानसिक कर्मों का अंतिम लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करना ही है। जब ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो कर्मों की आवश्यकता और उनका फल—दोनों ही उस ज्ञान के प्रकाश में विलीन हो जाते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान ही समस्त साधनाओं और कर्मों की पूर्णता है।

श्लोक संख्या: **4.34**

> तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया |
> उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः || **34** ||

हिन्दी अनुवाद:

उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ। उनको भलीभाँति दंडवत प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से, वे तत्व को जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

सरल व्याख्या:

परम ज्ञान केवल पुस्तकों से नहीं मिलता, इसके लिए एक जीवित गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु से ज्ञान पाने की तीन शर्तें हैं: पूर्ण विनम्रता (प्रणिपात), अहंकार रहित जिज्ञासा (परिप्रश्न) और निष्काम सेवा। जब शिष्य इन गुणों से युक्त होता है, तब अनुभवी महापुरुष उसके भीतर ज्ञान का संचार करते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... गुरु के प्रति समर्पण और सीखने की सच्ची तड़प ही ज्ञान प्राप्ति का द्वार खोलती है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.35**

> यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव |
> येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि || **35** ||

हिन्दी अनुवाद:

जिस ज्ञान को जानकर तू फिर इस प्रकार मोह को प्राप्त नहीं होगा तथा जिस ज्ञान के द्वारा तू संपूर्ण भूतों को पहले अपने में और फिर मुझ परमात्मा में देखेगा।

सरल व्याख्या:

सच्चा ज्ञान वह है जो मनुष्य के भीतर के भ्रम और शोक को जड़ से मिटा दे। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर मनुष्य को यह बोध होता है कि संसार के सभी प्राणी उसकी अपनी ही आत्मा के विस्तार हैं और अंततः सभी परमात्मा में ही स्थित हैं। यह सर्वत्र एकात्म भाव का दर्शन है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान मनुष्य को मोह से मुक्त कर उसे ब्रह्मांडीय एकता का अनुभव कराता है।

श्लोक संख्या: **4.36**

> अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः |
> सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि || **36** ||

हिन्दी अनुवाद:

यदि तू सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू ज्ञानरूपी नौका द्वारा निस्संदेह संपूर्ण पाप-समुद्र से भलीभाँति तर जाएगा।

सरल व्याख्या:

ज्ञान की महिमा इतनी अपार है कि यह अतीत के भयंकर से भयंकर पापों को भी अर्थहीन कर देती है। जैसे एक नौका मनुष्य को गहरे समुद्र से पार ले जाती है, वैसे ही आत्मज्ञान मनुष्य को उसके कर्मों के बुरे संस्कारों और दुखों से पार निकाल देता है। यह मनुष्य को नई चेतना प्रदान करता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान में सबसे पतित व्यक्ति का भी उद्धार करने की अमोघ शक्ति है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.37**

> यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन |
> ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा || **37** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है।

सरल व्याख्या:
जब ज्ञान की अग्नि भीतर जलती है, तो वह मनुष्य के कर्मों के संचित भंडार को जलाकर राख कर देती है। इसका अर्थ यह है कि ज्ञानी पुरुष के कर्म अब उसके लिए कोई नया बंधन या अगला जन्म पैदा नहीं करते। ज्ञान के प्रकाश में कर्म की 'पकड़' समाप्त हो जाती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान कर्मों के सूक्ष्म संस्कारों को नष्ट कर मनुष्य को पूर्णतः मुक्त कर देता है।

श्लोक संख्या: **4.38**

> न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते |
> तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति || **38** ||

हिन्दी अनुवाद:
इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निस्संदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कालान्तर में योग द्वारा सिद्ध हुआ मनुष्य अपने आप ही अपनी आत्मा में पा लेता है।

सरल व्याख्या:
संसार में ज्ञान से बढ़कर पावन कुछ भी नहीं है, क्योंकि यह मन की गहराई तक की अशुद्धि को मिटा देता है। यह ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता; जब मनुष्य निष्काम कर्मयोग में परिपक्व हो जाता है, तो समय आने पर यह सत्य उसके हृदय में स्वयं ही प्रकट हो जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर अभ्यास और शुद्ध आचरण से ज्ञान स्वतः ही भीतर जाग्रत होता है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.39**

> श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः |
> ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति || **39** ||

हिन्दी अनुवाद:
श्रद्धा रखने वाला, तत्परता से लगा हुआ और इन्द्रियों को वश में रखने वाला मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह तत्काल ही परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

सरल व्याख्या:
ज्ञान पाने की तीन अनिवार्य योग्यताएँ हैं: सत्य में अटूट विश्वास (श्रद्धा), ज्ञान पाने की तीव्र लगन (तत्परता) और इन्द्रियों पर विजय। जो इन तीनों को साध लेता है, उसे ज्ञान प्राप्त होता है और उस ज्ञान का तात्कालिक परिणाम है—शाश्वत और असीम शांति।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रद्धा और आत्म-संयम ही वे चाबियाँ हैं जिनसे शांति का द्वार खुलता है।

श्लोक संख्या: **4.40**

> अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति |
> नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः || **40** ||

हिन्दी अनुवाद:
विवेकहीन, श्रद्धारहित और संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है।

सरल व्याख्या:
भगवान उन बाधाओं के प्रति सचेत करते हैं जो विनाश की ओर ले जाती हैं। जिसे सही-गलत का बोध नहीं (अज्ञ), जिसके हृदय में श्रद्धा नहीं और जो हर बात पर केवल संदेह करता है, वह कभी प्रगति नहीं कर सकता। संशय करने वाला व्यक्ति हमेशा अशांत रहता है, उसे न तो संसार में सुख मिलता है और न ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... संदेह और अविश्वास आध्यात्मिक और मानसिक पतन का सबसे बड़ा कारण हैं।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **4.41**

> योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् |
> आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय || **41** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे धनंजय! जिसने योग के द्वारा कर्मों का संन्यास (परमात्मा में अर्पण) कर दिया है और जिसने ज्ञान द्वारा अपने समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे आत्मपरायण पुरुष को कर्म नहीं बाँधते।

सरल व्याख्या:
भगवान यहाँ उपदेश का सार बताते हैं। जिस व्यक्ति ने निष्काम कर्मयोग के माध्यम से अपने सभी कार्यों को ईश्वर को समर्पित कर दिया है और आत्मज्ञान के द्वारा जिसके मन की सारी दुविधाएँ और शंकाएँ समाप्त हो गई हैं, वह पूरी तरह सजग और स्थिर हो जाता है। ऐसे महापुरुष के लिए कर्म केवल एक लीला मात्र रह जाते हैं, वे उसे संसार के बंधनों में नहीं जकड़ सकते।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्मों का समर्पण और ज्ञान द्वारा संशय की निवृत्ति ही पूर्ण स्वतंत्रता का आधार है।

श्लोक संख्या: **4.42**

> तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः |
> छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत || **42** ||

हिन्दी अनुवाद:
इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन! तू अपने हृदय में स्थित इस अज्ञानजनित संशय को ज्ञानरूपी तलवार द्वारा काटकर समत्वयोग में स्थित हो जा और युद्ध के लिए खड़ा हो जा।

सरल व्याख्या:
अध्याय के अंत में भगवान अर्जुन को अंतिम आदेश देते हैं। अर्जुन के मन में जो मोह और डर था, वह केवल 'अज्ञान' के कारण था। भगवान कहते हैं कि विवेक और ज्ञान की तलवार उठाओ और इस संशय को जड़ से काट डालो। वे अर्जुन को 'समत्व' (सुख-दुख में समान रहना) में स्थित होने और अपना क्षत्रिय धर्म (युद्ध) निभाने के लिए प्रेरित करते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ कर्म से भागना नहीं, बल्कि अज्ञान और संशय को मिटाकर अधिक दृढ़ता से अपना कर्तव्य निभाना है।

Satyaanubhuti Ashram

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram